□□□□□□

जनसत्ता 3 जून, 2014 : धरती पर अलग-अलग जगहों पर तरह-तरह के जुल्म चल रहे हैं। जब हम इस खुशफहमी में होते हैं कि

पछिली सदियों की तुलना में हमने सभ्यता और सह-अस्तित्व की □क मंजलि पार कर ली है, ठीक तभी कोई झक्झोरता हुआ बतला जाता है कि कहीं कहर बरपा है, अभी तो मंजलि बहुत आगे है।

नाइजीरिया के बोको हरम नामक कट्टरपंथी इस्लामी संगठन ने दो सौ अस्सी स्कूली बच्चियों का अपहरण किया और पछिले दिनों □क वीडियो जारी किया है, जिसमें इन बच्चियों को धर्म परिवर्तन कर नमाज प□ते दिखलाया गया है। बोको हरम का अपना ही □क इस्लाम है जिसके मुताबिक वे इन ल□कियों को यौन-दासी के रूप में बेच सकते हैं। बेशक उनकी इस जघन्य हरकत की निंदा हर ओर हो रही है। जिन लोगों को इस तरह की वीभत्स घटना से फायदा उठाना है, वे उठा□ंगे। हमारे ही देश के □क भाजपा नेता हैं, जिनकी मोदी-विरोधियों को पाकिस्तान भेजने की धमकी पर काफी शोर मचा था। उनके खिलाफ □फआइआर भी दर्ज नहीं हुई थी। उन्होंने अपना कहा वापस न लेकर कह दिया था कि वे पाकिस्तान-परस्त लोगों के बारे में कह रहे थे।

सांप्रदायिकता का □क छोर राष्ट्रवाद है। दक्षिण □शिया के अवाम का मुल्कों के बीच सांप्रदायिक आधार पर निर्मित राष्ट्रवादी बंटवारों से हुई जंगें या कश्मीर का मसला जैसी समस्या□ं मूलत: सांप्रदायिक द्वेष हैं। ज्यादा गंभीर स्थिति तब होती है जब राष्ट्र और संस्कृति के नाम पर नियोजित हिंसा की घटना□ं होती हैं, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावित स्त्रियां और बच्चे होते हैं।

क्या मानव सभ्यता टुक□ों में बंटी है? अगर पहनावा, खान-पान, अर्चना-विधि के आधार पर सभ्यता को आंका जा□, तो धरती पर कहीं भी कोई □क सभ्यता नहीं है। किसी भी जगह भिन्न पहनावे, भिन्न रुचि के खान-पान और अलौकिक के प्रति भिन्न मतों की भरमार दिख जा□गी। सभ्यता□ं या तो अनंत हैं- कम से कम उतनी जितनी कि दुनिया की जनसंख्या है या फिर □क ही सभ्यता है- मानव सभ्यता। मानवता को पश्चिमी सभ्यता, भारतीय या चीनी सभ्यता आदि या इस्लामी, ईसाई या हिंदू सभ्यता की श्रेणियों में बांट कर देखने पर न केवल सवाल उठाने बल्कि इसे पूरी तरह नकारने का समय आ चुका है।

ऐतिहासिक अध्ययनों में मानव के विकास में महत्त्वपूर्ण प□ावों का ग्रीको-रोमन और हिंदू (सिंधु नदी के दक्षिण के अर्थ में) या अरब संस्कृतियों की बात करना इतना ही मायने रखता है, जितना कि यह कि आमतौर पर खाई जाने वाली आलू या दीगर सब्जियों की खेती पहले कहां होती थी। बौद्धिक विकास में ज्ञान का आदान-प्रदान सार्वभौमिक स्तर पर हमेशा होता रहा है। औपनिवेशिक शासकों के लि□ अपना वर्चस्व बनाने की खातिर यह जरूरी था कि वे ग्रीको-रोमन मूल से आ□ ज्ञान को श्रेष्ठ साबित करें और ऐसे ही उनके खिलाफ संघर्षरत राष्ट्रवादियों के लि□ यह कहना जरूरी था कि श्रेष्ठतर ज्ञान और विरासत यहीं रही है।

मगर अब न तो पहले जैसे उपनविश है, न ही वैसे राष्ट्रीय आजादी के आंदोलन। आज आर्थकि और सांस्कृतकि नव-उपनविशवाद का वर्चस्व है। जतिना खतरा नव-उपनविशवादी आर्थकि-सांस्कृतकि हमले का है, उतना ही राष्ट्रवादी संकीर्णता से है। इस खतरे को पहचान कर वशि्व भर में लोग संघर्षरत हैं कि इंसान को इंसान समझ कर □क धरती की कल्पना की जा□, ताकि टबिक्टू का सांस्कृतकि अतीत भी हमें उतना ही गौरव दे सके जतिना नालंदा का अतीत देता है।

आज मानव की समस्या□ वशि्व-स्तर की है। गैर-बराबरी पर आधारति पूंजीवादी वकिास और जगह-जगह चल रही जंगों की वजह से धरती की परस्थितियिां तेजी से तरह बदल रही हैं। वैज्ञानकिों का मानना है कि आधुनकि मशीनी जीवन-शैली ने ऐसे हालात पैदा कर दि□ हैं कि कई तरह की जैव-रासायनकि और भू-पारस्थितकिीय सीमाओं का हम अतक्रिमण कर चुके हैं। इनमें से कुछेक ऐसी सीमा□ हैं जहां से वापस लौटना नामुमकनि है। जलवायु में बदलाव, ओजोन परत में ब□ चुका छेद और समुद्रों के अम्लीकरण जैसी समस्याओं से जु□ आंकि□ बतलाते हैं कि हमें आपसी भेदभाव से ऊपर उठ कर धरती पर मंडरा रहे ब□ खतरों का सामना करना प□गा।

हाल में मौसम वज्ञिान के □क सम्मेलन में यह दखिाया गया कि अंटार्क्टकि का □क ब□ा ग्लेशयिर पघिलने की ऐसी प्रक्रयिा में आ गया है जसिे अब रोका नहीं जा सकता। इससे अगली दो सदयिों में समुद्र के पानी का तल तीन से पांच मीटर ब□गा, जसिसे दसयिों करो□ की संख्या में लोग वस्थिापति होंगे। नाइट्रोजन और फॉस्फोरस के जैवरासायनकि चक्र का संतुलन बगि□ रहा है। प्रजातयिां वलिुप्त हो रही हैं, जैवकि ववििधिता में तेजी से ह्रास हो रहा है। भू-संरक्षण, वायुमंडल में प्रदूषक तत्त्वों की मात्रा में अपूर्व ब□त आदि कई समस्या□ हैं, जनि पर गंभीरता से वचिार न कयिा गया तो संभव है कि अगली सदी तक धरती पर मानव का जीवन-नर्विाह असंभव हो जा□।

अब जब हम मानव के अस्तत्वि की वलिुप्तकि कगार पर ख□ हैं, यह समझ स्पष्ट होनी चाहि□ कि समूचे ब्रह्मांड में हमारी हैसयित तनिके भर की भी नहीं, न ही सृष्टि की शुरुआत से अब तक के इतहिास में मानवीय अस्तत्वि का काल साल भर में पंद्रह मनिटों से ज्यादा है। इतना ही हम मान लें तो हमारे लि□ यह समझना आसान हो जा□गा कि देश, धर्म, जाति आदि के आधार पर भेदभाव कितना बेमानी है।

ऐसे में यह जरूरी है कि हर नागरकि में वशि्व-दृष्टि का नर्िमाण हो। वशि्व-दृष्टि से हमारा मतलब यह नहीं कि स्थानीय संस्कृतयिों की अपनी अस्मति न हो। बल्कि इसके ठीक वपिरीत हम यह कहेंगे कि स्थानीय भाषाओं और संस्कृतयिों का वनिाश कर मानव की वैश्वकि अस्मति नहीं बन सकती।

इसलि□ अंग्रेजीवादयिों से हमारी सहमति नहीं है। ववििधिताओं के साथ लि□ हमें □क मानव-अस्मति बनानी है। ववििधिताओं से जीवन के अर्थ मलिता है। □कांगी मानव-अस्मति का कोई मतलब नहीं होता। वशि्व-संस्थाओं का □क प्रमुख काम ही यह होना जाहि□ कि स्थानीय संस्कृतयिों के ब□ावा मलिे। ववििधिताओं में कमी वशि्व-स्तर पर मानव-अस्मति को पनपने न देगी। यह बात पहली नजर में अटपटी लग सकती है, पर गहराई से सोचने पर सही लगती है। यह □क तरह का बुनयिादी मानव-सामाजकि सद्धिांत माना जा सकता है, कि वशि्व-स्तरीय अस्मति में अनश्चितिता और स्थानीय ववििधिता की व्यापकता का समीकरण बनता है कि दोनों का गुणनफल नयितांक है। □क ब□गा तो दूसरा कम होगा।

भारत, पाकस्तिान और बांग्लादेश, तीनों मुल्कों में बहुसंख्यकों की सांप्रदायकिता और व्यापक नरिक्षरता का फायदा उठाने वाली ताकतें सरगर्म हैं। हर मुल्क में सांप्रदायकिता का पुराना तर्क है- देखो, उस मुल्क में हमारे लोगों के साथ क्या हो रहा है।

हमारे नए प्रधानमंत्री पाकिस्तान के हिंदुओं को बचाने की बात करते हैं। उधर के ऐसे ही लोग इसी तरह यह कहते रहते हैं कि देखो भारत में मुसलमानों की क्या हालत है। भारत में यह सांप्रदायिक सोच आम है कि सभी आतंकी मुसलमान होते हैं, हालांकि ऐसा नहीं है। मुस्लिम देशों में भी आतंकवाद के खिलाफ सामान्य लोगों की लड़ाई चल रही है। बोको हरम की सबसे तीखी निंदा मुस्लिम देशों और संगठनों ने की है।

आखिर इसका हल क्या है? क्या यह इंसान की फितरत है कि वह हमेशा ही गुटों, धर्मों, जातियों आदि में बंटा रहेगा? विनाश का प्रसार सभी सरहदों के पार फैल रहा है और जल्दी ही चाहे-अनचाहे इंसान के धरती पर बने रहने के लिए विश्व-स्तर की नागरिक चेतना का विकास जरूरी हो जाएगा।

दीगर मुल्कों में आपसी समझौते का कोई विकल्प नहीं है और समय हाथ से निकलता जा रहा है। यूरोप में हाल की सदियों में भयंकर जंगें लड़ी गईं। बीसवीं सदी की दो आलमी जंगों में बड़ी संख्या में दुनिया भर के लोग मारे गए। आखिर में सदी के अंत में उन्होंने महासंघ बनाने का तय कर लिया और सरहदें खोल दीं। इसकी वजह से कई दिक्कतें सामने आईं। पोलैंड और रोमानिया जैसे कम संपन्न देशों से लोग इंगलैंड और जर्मनी जाने लग गए (हालांकि ब्रिटेन ने पूरी तरह सरहदें खोली भी नहीं थीं)। इसकी वजह से कई जगह अशांति बढ़ी। दक्षिणपंथी ताकतों ने युवाओं में बेकारी से पनपे तनाव का फायदा उठाने की कोशिश की। पर कुल मिलाकर स्थिति पहले की तुलना में बेहतर ही रही या कम से कम इतना तो कहा जा सकता है कि बदतर नहीं हुई। इसका मुख्य कारण यह है कि संकीर्ण राष्ट्रवादी चेतना से ऊपर उठ कर एक विश्व-स्तर की मानवीय चेतना ने जड़ें जमा ली हैं।

क्या हमारे लिए भी ऐसा ही कोई हल ठीक होगा? कल्पना करें कि भारत, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका और पाकिस्तान के बीच की सरहदों पर कोई रोक न हो। तुरंत कई लोग कहेंगे कि अरे बाप रे, फिर तो दोनों तरफ बलवाई सरगर्म हो जाएंगे। शायद ऐसा हो, पर अगर जितना खर्च अभी सरहदों पर सेना तैनात रखने में आता है, उसका एक छोटा हिस्सा भी बलवाइयों को रोकने के लिए लगाया जाए तो समस्या काफी हद तक कम हो सकती है। बाकी बचत से हम अपने शिक्षा, स्वास्थ्य आदि अन्य क्षेत्रों में बेहतरी ला सकते हैं।

सरकारों से अपने आप नीतियों में बदलाव की पहल की अपेक्षा रखना गलत होगा। खासतौर से नई सरकार जिस तरह बड़े पूंजीपतियों के कंधों पर चढ़ कर आई है और संसद में जैसे अपराधी-करोड़पति सदस्यों का बोलबाला है, यह उम्मीद रखना कि उनके दिलों में इस धरती और अगली पीढ़ियों की सुरक्षा के लिए जगह होगी, यह आधी रात में आसमान में सूरज ढूंढने जैसी बात होगी। संयुक्त राष्ट्र के सचिव-अध्यक्ष बान की-मून ने भारत के नए प्रधानमंत्री का स्वागत करते हुए उनसे गुजारिश की है कि वे संयुक्त राष्ट्र की मौसम में बदलाव पर होने वाली सभा में शिरकत करें, पर ये औपचारिक रस्में हैं।

दुनिया भर में सामान्य नागरिकता के सिद्धांत कैसे हों, मानव-अधिकार, स्त्रियों के अधिकार, समलैंगिकों के अधिकार, बेहतर पर्यावरण, इन सबको लेकर वैश्विक स्तर पर संघर्ष चल रहे हैं।

धरती को बचाने के लिए चल रहे इन जन-संघर्षों को मजबूत करना होगा। साथ ही हर नागरिक को अतीत के हर किस्म के उत्पीड़न और त्रासदी पर जानकारी देनी होगी, ताकि हम संवेदनशील बनें और उनके दुबारा होने से बच सकें। हिटलर, स्टालिन, अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा हुए उत्पीड़नों की तरह ही हमारे अपने 1946-47, 1984 या 2002 जैसी हर त्रासदी पर जितना भी कहा जाए, वह कम है। हर जगह हर तरह के भेदभाव के खिलाफ जागरूकता पैदा करनी होगी। इंसान हर जगह एक सा है, यह सामान्य बात क्या हमें तभी समझ आएगी, जब धरती बिल्कुल विनाश के कगार पर होगी!

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta